International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 358-360

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 358-360
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-03-2017
Accepted: 25-04-2017

डॉ. राका शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एन. के. बी. एम. जी. कॉलेज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. राका शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एन. के. बी. एम. जी. कॉलेज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

श्रमगीता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रोन्नति में श्रम का महत्व

डॉ. राका शर्मा

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2017.v3.i3f.1958

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उससे प्रेरणा पाकर अनेक गीताओं का प्रणयन किया गया है। उसी क्रम में डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर जी ने श्रमगीता की रचना की है। यह गीता शैली में लिखी गयी एक उपदेशात्मक कृति है। कवि ने जीवन में तथा राष्ट्र की उन्नति में श्रम के महत्व को प्रतिपादित किया है, सुदीर्घ संघर्ष के पश्चात् भारतवर्ष अंग्रेजों की दासता से मुक्त होता है। कवि का विचार है कि दासता से मुक्ति के बाद भारतीय समाज में व्याप्त दीनता, दरिद्रता और सब प्रकार की अभावग्रस्तता को दूर करने का तथा भारत के सर्वाङगीण विकास का एकमात्र मूलमंत्र श्रम ही है। जब तक भारतवासी श्रमशील नहीं होंगे तक वे समृद्धिशाली नहीं हो सकते । अतः भारतवर्ष को समृद्ध करने हेतु यहाँ की जनता का श्रमशील होना परमावश्यक है। महात्मा गाँधी के माध्यम से कवि निरुद्यमी के विषय में इस प्रकार भाव व्यक्त करता है–

निरुद्यमं निरुत्साहं समाज निष्परिश्रमम् ।
नैवोद्धारयितुं शाक्तः साक्षाद ब्रहमाण्ड नायकः।[1]

जिस राष्ट्र की प्रजा आलस्य के वशीभूत होकर श्रम नहीं करती वह राष्ट्र जल्द ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। अतः आलस्य का त्याग कर देना और श्रम की पूजा करना ही सार्वलौकिक धर्म है–

आलसस्य परित्यागः श्रमस्य परिपूजनम् ।
नृणां विधिनिषेधात्मा धर्मोऽयं सार्वलौकिकः ।[2]

कवि का मानना है जो विश्राम रहित होकर राष्ट्र की उन्नति के लिए परिश्रम करता है, वह सुकीर्ति तथा सम्पत्ति का अधिकारी होता है –

अखण्डितम् अविश्रान्तं यः श्रमं कुरुते नरः।
श्रियौ भूतेः सुकीर्तेश्च लोकेऽसौ एवं भाजनम्।।[3]

जो राजा निरन्तर परिश्रम द्वारा राष्ट्र के उत्थान में तत्पर रहता है वही दर्शनीय होता है। दरिद्र भी यदि परिश्रमी है तो वह भी दर्शनीय है।[4]

श्रम ही मनुष्य के हित एवं सुख का कारण है। श्रम ही संपत्ति को बढ़ाता है। श्रम ही विपत्ति में रक्षा करता है । श्रम ही भगवान् होता है[5]

श्रम के बिना धन व बुद्धि दोनों ही नहीं बढ़ते हैं। योग क्षेम भी श्रम के बिना प्राप्त नहीं किए जा सकते–

न योगो नाऽथवा क्षेमः कस्याप्यत्र श्रमं विना।
विना श्रम प्रवर्धन्ते न श्रियो नाऽथवा धियः।[6]

मन्त्र – तन्त्र, होम जप्, भाग्य आदि बिना श्रम के फलीभूत नहीं होते हैं–

न मन्त्रैर् नाऽथवा तन्त्रर् न होमेर न पुनर् जपैः ।
भाग्ये फलति कस्यापि विनैकं तं परिश्रमम् ।[7]

जो राष्ट्र महान होने पर भी दूसरे राष्ट्र पर निर्भर रहता है। वह रक्षा, पोषण, ज्ञान उन्नति को बढ़ाने में समर्थ नहीं होता। वही राष्ट्र पृथ्वी पर निरन्तर उन्नति को प्राप्त होता है जो योग–क्षेम करने वाले परिश्रम का निरन्तर सेवन करता है। जो परिश्रम को नही अपनाते हैं वे राष्ट्र महान होने पर भी शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाते हैं–

महतोऽपि हि राष्ट्रस्य परराष्ट्रावलम्बिनः ।
रक्षणे भरणे ज्ञाने समुत्थानं न शक्यते ।।
आलस्याभिभवाद् यानि न भजन्ते परिश्रमम् ।
तानि शीघ्रं विनश्यन्ति राष्ट्राणि सुमहान्त्यपि ।।
अग्रेसराणि राष्ट्राणि सन्ति तान्येव भूतले ।
योगक्षेमकरोयत्र सेव्यते संततः श्रमः ।।
ध्वस्तान्यपि महायुद्धै राष्ट्राण्युत्थापयन्ति ते ।
यैः समाराध्यते भक्त्या महान् देवः परिश्रमः ।।[8]

राष्ट्रभाव से ओतप्रोत कवि ने महात्मा गांधी के माध्यम से इस राष्ट्र के सर्वांगीण विकास मे श्रम ही एकमात्र उपाय है । श्रम की पूजा ही सार्वलौकिक है, श्रम से स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है तथा श्रम न करने वाले के घर और राष्ट्र में दरिद्रता का निवास हो जाता है । राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु पाठकों के मन में भी श्रम के प्रति एक नवीन धारणा उत्पन्न कर कवि अपने कर्तव्यपालन में पूर्ण सफल हुआ है –

क्षीयन्ते यानि पापानि योग–याग जपादिभिः ।
श्रमसंकल्पमात्रेण तानि नश्यन्ति तत्क्षणम् ।।
द्वयक्षरो हि मतः स्वर्ग त्र्यक्षरो नरको ध्रुवम् ।
श्रमोऽतोऽत्र मतः स्वर्ग आलस्यं नरकास्पदम्
आलस्ये रममाणस्य श्रमाय समसूयतः ।
जनस्य गेहे राष्ट्रे वा दारिद्र्यं रमतेतराम् ।।[9]

श्रम द्वारा ही राष्ट्र सुरक्षित रहता है। श्रम ही समस्त संसार को धारण करता है। श्रम ही लोकों को बढ़ाता है । श्रम के बिना कोई धर्म नहींहै –

नाभूवन् न भविष्यन्ति न भवन्तीह भूतले ।
सुसमृद्धानि राष्ट्राणि विनाऽश्रान्त परिश्रमम् ।।
आत्मोद्धाराय लोकेऽस्मिन् तथा सर्वोदयाय च ।
श्रमो विधात्रा विहितो गरीयान् राजदण्डतः ।
श्रमो धत्ते जगत् सर्वं श्रमो राष्ट्रं सुरक्षति ।
श्रमों वर्धयते लोकान् नान्योः धर्मः श्रमंविना ।।[10]

कवि ने श्रमिक को योगियों में पूजनीय कहकर श्रमदान को महादान, श्रमवारि को ब्रह्मवारि, श्रम को ही परमधर्म तथा श्रम को ही मुक्ति प्रदान करने वाला कहकर उसके प्रति अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त की है–

श्रमो हि परमो धर्मः शाश्वतः सार्वलौकिकः ।
श्रमासक्तिः पराभक्तिः भुक्ति–मुक्ति– प्रदायिनी ।।
श्रमदानं महादानं देवानामपि दुर्घटम् ।
श्रमवारि ब्रह्मवारि स्वर्लोकेऽपि सुदुर्लभम् ।।
योगिनामपि सर्वेषां पूजनीयो हि सर्वथा ।
एकाकी प्रतपन् क्षेत्रे श्रमयोगी कृषीवलः ।।
श्रमयोगी महायोगी श्रमिको धार्मिको महान् ।
श्रमाचारी ब्रह्मचारी श्रमशीलो हि शीलवान् ।।[11]

कवि ने श्रम का राष्ट्र के विकास में प्रमुख तथा लोककल्याणकारी स्वरूप प्रस्तुत करते हुए श्रम को ही साक्षात् सभी देव, माता, पिता तथा नेता आदि सब कुछ कहकर पाठकों के मन में परिश्रम के प्रति एक आदर्श एवं व्यापक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहा है –

श्रमो रामः श्रमः कृष्णः श्रमः शंभु श्रमः प्रभुः ।
श्रमो बुद्धः श्रमः ख्रिस्तः श्रमः पैगम्बरोऽथ वा ।।
श्रमो दाता श्रमो नेता श्रमो माता पिता श्रमः ।
कर्ता कारयिता लोके ह्येको देवः परिश्रमः ।।[12]

डॉ0 वर्णेकर जी के अनुसार आलसी व्यक्ति इस संसार में कुछ भी नहीं कर सकता । यहाँ तक कि वह अपना और अपने कुटुम्ब का पालन पोषण नहीं कर सकता। उनका यह भी निश्चित मानना है कि जो लोग बिना परिश्रम के कुछ भी भोग करते हैं वह निश्चित ही निर्लज्ज हैं। वह परिश्रम से रहित व्यक्तियों को राष्ट्र के लिए घातक मानते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के आदर्श को सम्मुख रखकर वह अपने अन्तःकरण में विद्यमान परिश्रम के महत्व को पुनः प्रतिपादित करते हुए कहते हैं –

नाश्रमी वसुधां भुङ्कते नाश्रमी सुखमेधते ।
बिभर्ति नाश्रमी कश्चित् स्वात्मानं न कुटुम्बकम् ।।
न श्वसन्ति न जीवन्ति नाश्नुवन्ति मनाक् सुखम् ।
विना श्रमेण केऽप्यत्र श्रमलोको ह्ययं ध्रुवम् ।।[13]

डॉ वर्णेकर जी भोजनादि के विषय में भी परिश्रम से उत्पन्न किये गये अन्न को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। वे परिश्रम से उत्पन्न अन्न को साक्षात् अमृत बताते हुए कहते हैं–

स्वश्रमोपार्जित ह्यन्नं तत् नूनं परमामृतम् ।
न तत् क्षीराब्धि – संभूतं न वा यज्ञहुतं हविः ।।[14]

कवि ने कृष्णकाय वाले लंगोटधारी उस परिश्रमी को साक्षात् देवता माना है, जो धूलधूसरित होकर भीषण आतप में भी अपने कार्य में संलग्न है । शरीर से परिश्रम के कारण उत्पन्न पसीने को गंगा और यमुना के जल से भी श्रेष्ठ बताते हुए कवि कहता है–

कृष्ण–कायः स्विन्न–गात्री लांगली धूलि–धूसरः ।
तपन् क्षेत्रे श्वसन् उच्चैः कोऽपि देवः परिश्रमः ।
न तद् विभर्ति पावित्र्यं गांग वा यामुनं जलम् ।
कृषीवलस्य तप्तस्य कायोत्थं श्रमवारि यत् ।।[15]

कवि ने श्रमिक के स्वेदाम्बु कण को हीरे, मोतियों से भी अधिक तेज वाला बताते हुए कहा है–

न मुक्तासु न हीरेषु तत् तेजः खलु राजते ।
शिल्पिनः श्रमतप्तस्य स्वेदाम्बु–कणिकासु यत् ।।[16]

सभी यज्ञों से श्रमयज्ञ को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कवि कहता है–

राजसूयाद् वाजपेयाद् ज्योतिष्टोमाच्च सर्वथा ।
भवेत्तोषाय देवानां श्रम–यज्ञो निरग्निकः ।।[17]

कार्य करते समय परिश्रम द्वारा जो कुछ दुःख प्राप्त होता है। बाद में वही सुख प्रदान करने वाला होता है–

श्रमेण दुखं यत् किञ्चित् कार्यकालेऽनुभूयते।
कालेन स्मर्यमाण तत् प्रमोदायैव कल्पते ।।[18]

श्रम का सिद्धान्त अपूर्व है। वही समस्त कल्याण का हेतु है। वह श्रम ही राष्ट्र उन्नति के लिए उपयोगी है।[19]

दण्ड के भय से लोग कार्यों में प्रवृत्त होते हैं किंतु श्रम से प्रेम करने वाले, बिना भय के ही समस्त भोगों को भोगते हैं।[20]

कुल क्रमागत धन द्वारा और ना ही जाति से मनुष्य की प्रशंसा होती है। परिश्रमी व्यक्ति ही प्रशंसा को प्राप्त करता है–

न क्रमागतेन वित्तेन न जात्या सुप्रतिष्ठिता।
पुरुषः श्लाघ्यतां याति, श्लाघ्यो यः परिश्रमी ।।[21]
युद्धवीर, दयावीर, दानवीर, धरमवीर ये सब श्रमवीर की तुलना को कभी प्राप्त नहीं कर सकते। तपस्वियों, ज्ञानियों से भी बढ़कर परिश्रमी होता है –
युद्ध–दान– दया–धर्म–परा वीराश्चतुर्विधाः ।
ते सर्वे श्रमवीरस्य तुलनां यान्ति न क्वचित् ।।
तपस्विभ्यो कर्मिभ्यो ज्ञानिभ्योऽपि योऽधिकः ।
मतो योगी, तथा नूनं सत्कार्येषु परिश्रमी।[22]

कवि महात्मा जी के माध्यम से राष्ट्रोन्नति मे श्रम की महिमा का यशोगान करते समय अपनी पवित्रतम एवं आदरणीय मान्यताओं को भी श्रम के समक्ष नगण्य मानता है । उसका कहना है –

प्रश्राम्यन् पङ्किले क्षेत्रे पङ्क – लिप्ततनुर्हि यः ।
स वन्द्योऽश्रमिणः साधोर् भस्माङ्कित–तनोरपि ।।
श्रमातिरेक–क्लान्तस्य या ग्लानिः श्रमिणो भवेत् ।
ध्यान स्थितेरपि श्लाघ्या सा खल्वश्राम्यतो मुनेः ।।[23]
राष्ट्रोन्नति हेतु श्रमदान करने वाले व्यक्ति स्वर्गारोहण के पश्चात भी कीर्ति से जीवित रहते हैं–
स्वर्गगता अपि जीवन्ति कीर्तिरुपेण ते भुवि ।
चमत्कृता हि वैर्लोका अविश्रान्त – परिश्रमैः ।।[24]

संदर्भ ग्रन्थ

1. श्रमगीता/24
2. श्रमगीता/27
3. श्रमगीता/38
4. श्रमगीता/92
5. श्रमगीता/47,48
6. श्रमगीता/49
7. श्रमगीता/52
8. श्रमगीता/26–30
9. श्रमगीता/35,36
10. श्रमगीता/37–40
11. श्रमगीता/95–98
12. श्रमगीता/114,115
13. श्रमगीता/44,45
14. श्रमगीता/62
15. श्रमगीता/30,64
16. श्रमगीता/71
17. श्रमगीता/52
18. श्रमगीता/79
19. श्रमगीता/86
20. श्रमगीता/41
21. श्रमगीता/91
22. श्रमगीता/80,81
23. श्रमगीता/60,75
24. श्रमगीता/90